

## न्यायिक नहीं, सामाजिक आंदोलन चलाइए



भारत के विशाल सांस्कृतिक और धार्मिक परिदृश्य में अनेक संस्कृतियों और धर्मों की अलग-अलग मान्यताएं और रीति-रिवाज हैं। बंगाली हिन्दुओं के लिए पुरी की यात्रा तब तक संपूर्ण नहीं मानी जाती, जब कि वे जगन्नाथजी के मंदिर जाकर दर्शन न कर लें। इसी प्रकार कुछ अन्य हिन्दुओं के लिए बनारस का विश्वनाथ मंदिर और कुछ के लिए गुवाहाटी का कामाख्या मंदिर है।

यूँ तो भारत के अधिकांश हिन्दू मंदिरों में प्रवेश निषेध नहीं है, लेकिन कुछ मंदिर; जैसे- जगन्नाथ मंदिर, लिंगराज मंदिर, पद्मनाथस्वामी मंदिर आदि ऐसे हैं, जो गैर-हिन्दुओं का प्रवेश वर्जित करते हैं। इसी प्रकार सबरीमाला मंदिर में 12 से 50 वर्ष तक की महिलाओं का प्रवेश वर्जित है।

हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने सीमित प्रवेश वाले मंदिरों को अपने द्वार सभी के लिए खोलने के निर्देश देने शुरू किए हैं। जगन्नाथ पुरी के मंदिर को भी ऐसा निर्देश देते हुए न्यायालय ने कहा है कि 'हिन्दू धर्म, एक ऐसा धर्म है, जो अपने भीतर अनेक विश्वासों को समाहित करके चलता है। इस धर्म का कोई एक संस्थापक नहीं है, न ही यह एक ग्रंथ तक और एक ही प्रकार की शिक्षा तक सीमित है। यही कारण है कि इसे सनातन धर्म कहा गया है, क्योंकि इसकी शिक्षा में युगों-युगों से चली आ रही विवेकपूर्ण मान्यताएं और प्रेरणा शामिल हैं।' न्यायालय के इस सुझाव के प्रति मंदिर समिति का रुख नकारात्मक है।

पिछले दिनों अपेक्स कोर्ट ने सबरीमाला मंदिर पर महिलाओं के प्रवेश को लेकर एक याचिका पर सुनवाई की है। अब मंदिर के भक्तों को इस बात का डर है कि न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 25(2) का वास्ता देकर मंदिर प्रवेश-निषेध

को हटा सकता है। अनुच्छेद 25(2) में हिन्दुओं के सभी वर्गों को मंदिर प्रवेश की छूट दी गई है। अगर ऐसा हो जाता है, तो यह स्थानीय धार्मिक मान्यता के विपरीत कदम होगा।

हिन्दू मान्यताओं और प्रथाओं को बदलने का यह कोई नवीन प्रयास नहीं है। गौतम बुद्ध के काल से लेकर 1950 में भारतीय संविधान के बनने तक, सनातन धर्म में लगातार अनेक सुधार हुए हैं। बदलते दौर में, शहरीकरण के साथ ही वैश्विक मेलजोल और प्रजातांत्रिक राजनीति के चलते हिन्दू धर्म अनेक परिवर्तनों से गुजरा। लेकिन इन सबके बीच इस समुदाय में आस्था रखने वालों को अपने अस्तित्व को लेकर कभी संकट का अनुभव नहीं हुआ। बल्कि, आज इस बात को दावे से कहा जा सकता है कि अपने धर्म, विश्वास, सामाजिक प्रथाओं और राजनीति में पकड़ रखने वाली हिन्दू-समरूपता पहले से अधिक सुदृढ़ है। इसको देखकर ऐसा लगता है कि इस सीमा तक किसी भी न्यायालय का कोई भी निर्णय, हिन्दू धर्म की एकता और अखंडता को हिला नहीं सकता।

सबसे बड़ी बात यह देखने की है कि परिवर्तन को पेश कैसे किया जा रहा है? पहले के हिन्दू पुनुरुद्धार कार्यक्रम शास्त्रों के पुनरावलोकन या हिन्दू गरिमा के आव्हान पर केन्द्रित थे। कानून की अहमियत कुछ ही लोगों के लिए थी। लेकिन दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय, विवेकानंद आदि सामाजिक सुधारकों का प्रभाव जन-जन के बीच में था। इनके कथन को लोग ब्रह्मवाक्य की तरह ग्रहण करते थे। इसी प्रकार महात्मा गांधी ने छुआछूत को हटाने के लिए एक जन आंदोलन चलाया था, जिसके कारण हिन्दू समाज इस बीमारी से कुछ हद तक निजात पा सका।

दुर्भाग्य यह है कि आज का समाज सुधार सर्वोच्च कानूनी शक्ति से संचालित किया जा रहा है। ऐसा नहीं कि सामाजिक कार्यकर्ताओं की देश में कमी हो गई है या लोग सामाजिक परिवर्तन लाना नहीं चाहते। परिवर्तन लाने के इच्छुक लोगों के पास राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव की कमी है। सच्चाई यह है कि ऐसे लोग आज हिन्दू समाज की संस्थाओं और आस्थाओं से सरोकार नहीं रखते। यहाँ तक कि वे अपने को हिन्दू कहने में भी शर्म महसूस करते हैं। उनके लिए आज उस धर्म का स्वच्छता अभियान मायने ही नहीं रखता, जिसने भारत की पहचान बनाई है। उनके लिए तो बस पश्चिमी प्रगतिवादी मूल्यों पर आधारित संवैधानिक नैतिकता ही अर्थ रखती है। वर्तमान में तो बस एक आधारहीन तर्कवाद और न्यायिक निरंकुशता का समर्थन करने वालों के बीच के समझौते का ही बोलबाला है। इसमें धैर्यवान, प्रजातांत्रिक राजनीति का कोई स्थान नहीं है। हालांकि समाज में कहीं-कहीं परिवर्तन की जरूरत है, और अगर यह नहीं हुआ तो संभव है कि प्रतिक्रिया स्वरूप कोई ऐसी क्रांति जन्म ले ले, जो क्रूरतापूर्ण हो।

न्यायालय को यह अधिकार है कि वह प्रथाओं और विश्वासों की उपेक्षा कर दे। परन्तु वह नए नियमों को अनिवार्य और औचित्यपूर्ण बनाकर समाज को उसे मानने के लिए फुसला नहीं सकता।

**‘द टाइम्स ऑफ इंडिया’ में प्रकाशित स्वप्न दासगुप्ता के लेख पर आधारित। 29 जुलाई, 2018**